हिन्दी उपन्यास और उत्तर आधुनिकता के बदलते सन्दभ

प्रो0 (डॉ0) विष्णु कुमार अग्रवाल,
अध्यक्ष–हिन्दी विभाग,
शास.स्ना.उत्कृष्ट महाविद्यालय,मुरैना,म.प्र

जगपाल सिंह यादव,
शोधार्थी–हिन्दी,
जीवाजी विश्वविद्यालय,ग्वालियर,म.प्र

शोध सारांश

उत्तरवर्ती आधुनिक भावबोध से प्रभावित उपन्यासकारों ने परम्परा से अलग हटकर एक नया आयाम देने का प्रयास कियस है। उनकी अभिव्यक्ति में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता अधिक दिखायी देती है। वे किसी जीवन के घटक को ऐसे ही स्वीकार नहीं कर लेते। विवेक की तुला पर तौलकर जब तक उन्हें सन्तुष्टि नही होती तब तक किसी भाव, विचार, चिन्तन पक्ष के साथ सामजंस्य स्थिापित नहीं करते। किसी भी वर्ग श्रेणी और स्थिति का पात्र आज वस्तु स्थिति को देखने और समझने की सामर्थ्य रखता है। इसलिए वह विद्रोह करने में नहीं चूकता। उच्च श्रेणी की तो बात क्या ? अशिक्षित, निम्नवर्गीय और महिला होते हुए भी प्रतिरोधक क्षमता में परिवर्तन आया है। इसलिए उपन्यास की पात्र अपनी मालकिन को निरूत्तर कर देती है–'' दस–दस घर तो पकड़ रखे हैं। लेट नही आयेगी तो और क्या होगा ? छोड़ क्यों नही देती एकाध काम ? उसका उत्तर होता है– अजी वाह ! क्यों छोड़ दूँ। दो एक काम ? अपने हाथ जोड़ तोड़कर कमाती हूँ, छातियों में साँप काहे लोटता है ?''युगबोध और आह्वान का युग है, जिसमें उपन्यासकार मानव को अपनी सशक्त लेखनी से उद्‌बोधित करने का प्रयास कर रहा है, क्योंकि जो जाग जायेगा वह अपना रास्ता अपने आप बना लेगा–''एक बार वे जाग जाएँ अपनी ताकत को समझ जाएँ, तो फिर वे अपना रास्ता आप बना लेंगे और अपने कंधों से उन सारी ताकतों को झिझोंड़ कर फेंक देंगे, जो उन्हें दबाती आयी हैं।''

Keywords: *हिन्दी उपन्यास ,उत्तर आधुनिकता, तनावों एवं डिप्रेशन,रचना प्रकिया एवं शिल्प विधान*

उत्तर आधुनिकता काल के उपन्यासों की रचना प्रक्रिया एवं शिल्प विधान की यदि बात की जाए तो वह सामाजिक जीवन, प्रशासन तन्त्र, राजनीति की स्वार्थपरता, व्यक्ति का अकेलापन, विकास के नाम पर विनाश को आमंत्रित करती योजनाएं और अपने भीतर दहकती भावाग्नि को लेकर सार्वजनिकता में भी अकेले पड़ते जा रहे व्यक्तियों सहित अनेक पक्षों को इन उपन्यासों में सृजन के तौर पर स्थान मिल रहा है । वास्तविकता यह है कि ये उपन्यास जीवन से सीधे मुठभेड़ की प्रक्रिया के परिणाम हैं। उनमें सहज–सरल–सी दिखाई देती जिन्दगी अपनी विरूपताओं के साथ मौजूद है कहीं उसकी जटिलता उपस्थित है तो अनेक स्तरों पर आन्तरिक एवं बाह्य संघर्ष कर रहे व्यक्ति के जीवन का ताना–बाना भी जुड़ा हुआ है ।

उत्तर आधुनिक काल के उपन्यासों में सामाजिक, राजनीतिक,वैश्विक स्थितियों का स्वानुभूत, निरपेक्ष और यथार्थमूलक आंकलन हुआ है। उत्तर कालीन जीवन की विरूपताओं,विसंगतियों एवं विभीषिकाओं की आज के रचनाकारों ने वैयक्तिक स्तर पर भोगा है और उसे कलागत निरपेक्षता एवं निर्ममता के साथ अपने उपन्यासों में अंकित किया है। उत्तर आधुनिक काल के हिन्दी उपन्यास जीवन के जटिल संदर्भो से जुड़ा है। जीवन की अनेक समस्याओं के बीच अपने अस्तित्व के लिए जूझते

मानव का संघर्ष, उसका अकेलापन, अजनबीपन, घुटन, संत्रास और तनाव इनके विषय बन रहे हैं। इसके कारण लगभग स्पष्ट हैं कि स्वतंत्र होने के बाद हम क्रमशः मानसिक परतन्त्रता में कसते गए। जो काम मैकाले नहीं कर सका वह बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, विदेशी अवधारणाएँ और जीवन–शैलियाँ कर रही हैं। इनसे प्रभावित कुछ लोग पैस्टीश संस्कृति का सृजन करने लगे हैं। साहित्य, सांस्कृतिक उत्पादन है। अब क्या था, विदेशी विषयवस्तु, शैली और कोड ग्रहण किये जाने लगे। पर अन्य लोगों ने इनको स्वदेशी सन्दर्भों से जोड़ा और कुछ अपनी जड़ों को नए सिरे से खोजने लगे। परम्परा और आधुनिकता में टकराहट हुई और हो रही है कुछ स्थितियों को छोड़ दे तो यह एक शुभ लक्षण भी कहा जा सकता है।

उत्तर आधुनिकता की कोई निश्चित परिभाषा भले ही न हो किन्तु हमारी पूरी वर्तमान साहित्यिक पीढ़ी उससे आतंकित है। सुधीश पचौरी का कहना है कि अभी साहित्य बाजारी संस्कृति का अंग नहीं हुआ है और कतिपय कलायें भी सुरक्षित है, बेइमानी है।'' चित्रकृतियों का उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि आज चित्रकारों की चित्रकृतियों की नीलामी 'सौथ वीं मैसी' कम्पनियां करती हैं। हुसेन रजा से लेकर नए चित्रकारों तक की पेंटिंग्स खूब बिकती हैं जिसे बड़े सेठ , माफिया डॉन, औद्योगिक घराने के लोग खरीदते हैं और कहते हैं कि यह कला है। जब कि वास्तविकता है कि यह व्यापार है। साहित्यकारों और लेखकों की चर्चा करते हुए वे कहते कि– 'इण्डिया टुडे' का विशेषांक निकलता है तो उसमें लिखने से कोई लेखक मना नहीं करता क्योंकि उसकी प्रसारण क्षमता लाखों में है और वह रचना पर अच्छा पैसा देता है। इस प्रकार पचौरी जी का मत है कि उत्तर आधुनिकता से बचना आज के समय में मुश्किल है।

उपन्यास आज के साहित्य की सबसे प्रिय एवं सशक्त विधा है इसमें मनुष्य के व्यापक जीवन की यथार्थता, मानसिक भावों, विचारों का अंकन तथा मन की असीम गहराइयों की नाप–जोख के साथ परिवर्तन शील समाज के विविध आयामों व मानवीय द्वन्दों का प्रमाणिक चित्रण उपस्थित करने की अद्‌भुत क्षमता है। प्रारम्भ में उपन्यास लेखन का मूल उद्‌देश्य मनोरंजन करना था। इतिहास इस बात का गवाह रहा है कि हिन्दी में आरम्भ में तिलस्मी, जासूसी तथा अनुदित उपन्यासों की भरमार रही है। शुरू के दौर में हिन्दी उपन्यासों की परम्परा प्रायः लोकरंजन का काम करती हुई दिखाई देती है। आधुनिकता के प्रारम्भ दौर में सबसे सुखद बात यह हुई थी कि उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द्र के आगमन के साथ यह विधा लोकरंजन के साथ–साथ लोक जीवन से भी जुड़ गई थी। लेकिन आगे चलकर उत्तर आधुनिक काल में इसका स्वरूप सामाजिक सड़ी–गली परम्पराओं के निष्कासन हेतु आरम्भ हुआ। आरम्भ में मनोरंजन के प्रधान साधन के रूप में देखी जाने वाली यह विधा सामाजिक चेतना के विचार के साथ प्रस्तुत होने लगी। उत्तर आधुनिक काल में हिन्दी उपन्यास विधा दुनिया की किसी भी भाषा की श्रेष्ठ उपन्यास विधा के साथ तुलना के लिए रखी जा सकती है। इसका प्रमुख श्रेय उपन्यास के कलात्मक पक्ष के साथ–साथ वैचारिक पक्ष को जाता है। इ0एम0फास्टर के शब्दों में–"उपन्यास केवल कथात्मक गद्य नहीं है, वह मानव जीवन का गद्य है।" आस्थिरता से आक्रान्त मानव–जीवन की विविध भावभंगी, उसकी समस्याएँ एवं उनकी परिव्याप्तता के चित्रिकरण में हिन्दी उपन्यास अपने दायित्व बोध के साथ निरन्तर अग्रसर है। साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास बदलते सामाजिक जीवन निरन्तर क्षरण होते नैतिक मूल्यों को चित्रित कर किस प्रकार बीमार, संकीर्ण और क्षुद्र मानसिकता को उदात्त और मानवीय बनाती है,

इन तमाम बिन्दुओं पर विस्तृत प्रकाश डालना ही इस शोध का मुख्य अभीष्ट या उद्देश्य है।

यदि हम साहित्यिक दृष्टि से देखें तो शाल्मली,नासिरा शर्मा, छिन्नमस्ता ,प्रभा खेतान,अल्मा कबूतरी,मैत्रैयी पुष्पा ,समय सरगम ,कृष्णा सोबती, जम्मू जो कभी शहर था, पद्मा सचदेव, तापसी ,कुशुम अंसल, कैसी आगि लगाई,असगर वजाहत ,नासिरा शर्मा,कुइयांजान ,कही ईसुरी फाग,ईसुरी, एक ब्रेक के बाद,एक ब्रेक के बाद,अलका सारावगी, मिलजुल मन,चितकोबरा,मृदुला गर्ग,कथा सतीसर राजकमल, मैं बोरिशाइल्ला ,महुआ माजी, जिंदगीनामा,कृष्णा सोबती, ऑवा, चित्रा मुद्गल,औरत,कृष्णा अग्निहोत्री,सुक्खम–दुक्खम,ममता कालिया, अन्या से अनन्या, कृष्णा सोबती अंतिम अरण्य, निर्मल वर्मा ,कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर,सूत्रधार, संजीव ,आखिरी कलाम ,दूधनाथ सिंह, तबादला,विभूति नारायण, वह जो यथार्थ था, अखिलेश, टूटने के बाद, संजय कुंदन ,चिरंजीव, चंद्रकिशोर जायसवाल,ग्लोबल गांव के देवता ,रणेन्द्र काला सच, मनमोहन सहगल,कुरु कुरु स्वाहा,क्यापहरिया हरकुलीज,मनोहर श्याम जोशी, मुझे चांद चाहिए,सुरेंद्र वर्मा,डूब,वीरेंद्र जैन,हमारा शहर उस बरस, गीतांजलि श्री जैसे उपन्यासों में..... .....उत्तर आधुनिकता अपने विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुई है। इन रचनाओं में हम उत्तर आधुनिक तनावों एवं डिप्रेशन को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

वर्तमान के उत्तर आधुनिक समाज के मूल्यों का मानदण्ड मानव–प्रेम नहीं है। अपितु सामाजिक परिवेश के व्यापार एवं बाजार से उसका अटूट रिश्ता भी है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री श्री पूरनचन्द जोशी ने बाजार, साहित्य, संस्कृति और मूल्यों के गंभीर प्रश्नों को उठाया है–''क्या मुक्त बाजार की अवधारणा का प्रवेश संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में भी उतनी ही आसानी से हो पाएगा जितनी आसानी से वह आर्थिक और राजनीति क्षेत्र में होता नज़र आ रहा है। क्या साहित्य में ऐसी अंदरूनी शक्ति और स्फूर्ति है कि वह प्रभाव और परिवर्तन की दिषा का निर्धारक बन सकता है?.....क्या यह भी असंभ्सव नहीं कि मुक्त बाजार जिसने सदा जीवन को भी बाजार खरीद–फरोख्त की वस्तु बनाकर उसको बाज़ार में खड़ा किया है और जो मानव की गरिमा को ध्वस्त करने का साधन बना है उस मुक्त बाजार के विरोध में जनमानस को जागृत और सचेष्ट करने का आरम्भ सर्वप्रथम संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में ही होगा? क्या यह भी असंभव नहीं कि मुक्त बाजार जो खगोलीकरण के नाम पर पिछड़े हुए राष्ट्रों की स्वायत्तता और उनकी अस्मिता को समाप्त कर उन्हें सषक्त पूंजीवादी देषों को आश्रित बनाकर एक नये उपनिवेशवाद के युग का सूत्रपात करने की क्षमता रखता है उसके विरोध में लामबंदी संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में आरम्भ होगी?'' जोशी जी ने साहित्य की जिस शक्ति की ओर संकेत दिया है वह हमारे कालजयि साहित्य में पहले से ही मौजूद है। आधुनिकता के तनाव हमारे समकालीन साहित्य में दिखाई देते हैं। इसके कथ्य में स्त्री वर्ग, दलित जनजातियाँ, समलैंगिक स्त्री पुरूष जिन्हें हाशिये पर रखा गया था। अब वे अपनी मुक्ति, अस्मिता के लिये संघर्ष करते दिखाई दे रहे हैं। इतना ही नहीं रचनाकार यश, इनाम, प्रकाशन के लिए दौड़ रहे हैं, पुरस्कार प्राप्त करने की एक नवीन संस्कृति उदय हो रही है। इन रचनाकारों की कृतियों ने समकालीन विमर्श को दूर तक बदल दिया है। 'पालगोमरा का स्कूटर', 'कुरू कुरू स्वाहा', 'हरिया हरकुलीज की हैरानी', 'डूब', 'मुझे चाँद चाहिए', 'एक जमीन अपनी', 'बाजार', 'महानगरी में गिलहरी', 'इन्द्रजाल', 'विश्व बाजार का ऊँट', 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', 'कलि का सत', 'दूसरे किले में औरत', 'प्रोटोकाल', 'हलफनामा', 'दौड़', 'हमारा शहर', 'उस चाँदनी की वर्तनी', 'बरस, उन्माद', 'महाभोज, धड़कन के उस पार आदि रचनायें उत्तर आधुनिकता की

दृष्टि से महत्वपूर्ण है जिनमें उत्तर आधुनिक मूल्यों के तनाव देखे जा सकते हैं। राजेश जोशी 'चाँद की वर्तनी' में बाजार के खतरे की ओर संकेत करते हुए कहते हैं – ''बाजार पहले ही चुरा चुका था हमारी जेब में रखे सिक्कों को/और अब वह सौदा कर रहा था हमारी भाषा का/और हमारे सपनों का/'' हिन्दी के प्रख्यात टिप्पणीकार गिरीष मिश्र का मानना है – मानव इतिहास में एक नया युग शुरू हुआ है जिसमें राष्ट्रीय सीमाएँ निरर्थक हो गई हैं और राष्ट्र राज्य की अवधारणा कूड़ेदान में चल गई हैं। भूमण्डलीय बाजार के तर्क की माँग है कि सभी देष अपने दरवाजे वस्तुओं और पूँजी के उन्मुक्त प्रवाह के लिए खोल दें। उनके पास दूसरा विकल्प नहीं। कथाकार सुभाष पंत अपनी 'बाजार' कहानी में बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के द्वारा सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में तूफान आने, परिवार के क्रीम या प्रिय सदस्य को छीनकर उत्पाद और पण्य बनाकर बेचने के प्रतिकार की दो युग्मक कथायें हैं। आनन्द हर्षुल की कहानी 'महानगर में गिलहरी' अपने फंतासी षिल्प में एक बड़ा कैनवास लेती है। कथा गाँव के कस्बा, कस्बा से महानगर के विकासक्रम में पेड़ों, परिन्दों, आकाश, मुक्त हवा की बात करती है, बच्चों की बात करती है,.....पेड़ कम हुए तो फलों का लोप हुआ, मुस्कान लुप्त हुई, चिड़िया और आकाष लुप्त हुए। अब वह सब डब्बों में हैं, बड़े–बड़े विज्ञापनों में हैं जो पोस्टर ग्लोसाइन बोर्ड, इलेक्ट्रोनिक डिस्प्ले बोर्ड में है, टी. वी. में है, कम्प्यूटर में है।''

यह उत्तर आधुनिकता का ही परिणाम है कि आये दिन नये–नये जन आन्दोलन उभरकर सामने आ रहे हैं। गाँव और शहरों में धड़ल्ले से सूचना के अधिकार का प्रयोग किया जा रहा है। आरक्षण की नीति से अनुसूचित जाति व जनजाति के लोग तथा महिलायें अपने आपको शक्तिशाली समझने लगे हैं। यहां आये दिन नये राज्यों की मांग होती रहती है। इस विखण्डन ने छत्तीसगढ़ को बनाया, झारखण्ड को जन्म दिया और उत्तरांचल को पैदा किया किसी के अधिकारों पर कहीं थोड़ा सा कुठाराघात कर देने पर वे तुरन्त सड़क पर आ जायेंगे। यह जनचेतना उत्तर आधुनिक समाज का पूर्वानुभव है। इस सभी तथ्यों से स्पष्ट है कि भारत में परम्परावादी आधुनिक तथा उत्तरआधुनिक तीनों समाज की विशेषतायें पाई जाती है। पूरी तरह से किसी एक ही प्रकार के समाज में परिवर्तित होना भारत के लिए मुश्किल होगा।

आज साहित्यकारों का उत्तर दायित्व बहुत बढ़ गया है। उन्हें गंभीरता से यह सोच विस्तृत करनी होगी कि विचार और अनुभव का पश्चिमी तरीका एक मात्र प्रामाणिक तरीका नहीं है। मानव की श्रेष्ठता का पैमाना उसी समाज के सापेक्ष होता है जिसमें वह रहता है। अतः हमें उत्तर आधुनिक 'स्व' स्वीकार करते हुए 'स्व राष्ट्रवाद' व 'स्वराज' निर्माण की समृद्ध परंपरा बनने की ओर अग्रसर होना होगा। उत्तर आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में 'राष्ट्रीय अस्मिता विमर्श' का सिद्धान्त–सूत्र यह हो सकता है कि मनुष्य के स्वभाव की अनिश्चितता के कारण सर्वमान्य आदर्श–नैतिकता की किसी शास्त्रीय 'मनुस्मृति' की संरचना संभव नहीं है। अतः सहअस्तित्ववादी 'नैतिकता का समाजशास्त्र' विकसित करने की आवश्यकता है। वर्तमान भाष्य समूहगत मूल्यों के मानवतावाद के 'नए पाठ' पर आधारित होना चाहिए और इस प्रसंग का भरत वाक्य यह हो सकता है कि कला और साहित्य अनुभव के जो सीमान्त रच सकते हैं उनकी ज्ञानपूर्ण उपलब्धि पूर्वक यथार्थ उपलब्धि हमारा काम है, क्योंकि आज सारे अनुभव अर्थ के अनुभव हैं। अतः भारतीय संस्कृति की गतिशीलता का अर्थ ग्रहण कर 'सांस्कृतिक विवेक' का विस्तार करना होगा। यह 'सांस्कृतिक विवेक' ही राष्ट्रीय अस्मिता की 'नव संरचना' करेगा।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि अभी सब कुछ खत्म नहीं हुआ है। इस उत्तर आधुनिकता के दौर में भी हम चिकन–बिरयानी से निकलकर चोखा–बाटी खा सकते हैं, किसी गरीब को गले लगा सकते है, बाँसुरी का आनन्द ले सकते हैं, लिफ्ट संस्कृति के स्थान पर सीढ़ियों का सहारा ले सकते हैं, शहर की व्यस्त जिन्दगी को छोड़कर गाँव की गलियों में विचरण कर सकते है। बाजारवाद से निकलकर अपना खयाल खुद रख सकते हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य के उपन्यासों में नयी सूक्ष्मताएँ और संभावनाएँ, भी गर्भित और संदर्भित हो गयी हैं, जो नये समाजशास्त्र और नये साहित्य की माँग कर रही हैं।

सहायक ग्रंथ

1. पचौरी सुधीश,उत्तर आधुनिकता प्रस्थान बिन्दु– वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
2. पचौरी सुधीश,उत्तर आधुनिक साहित्य विमर्श–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
3. पालीवाल कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकतावाद की ओर, 2008
4. अरोड़ा अतुलवीर, आधुनिकता के संदर्भ में आज का हिन्दी उपन्यास–पब्लिकेशन ब्यूरो,पंजाब विश्वविद्यालय,1974
5. उपाध्याय डॉ0 देवराज, आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और मनोविज्ञान, 1956
6. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, उत्तर आधुनिकता : विचार और मूल्यांकन,ओमेगा प्रकाशन,नई दिल्ली,2010
7. बोरा राजमल, हिन्दी उपन्यास : प्रयोग के चरण–वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 1972
8. मदान डॉ0 इन्द्रनाथ, आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास–नई दिल्ली, 1981
9. वार्ष्णेय लक्ष्मीसागर, हिन्दी उपन्यासः उपलब्धियाँ–राधाकृष्ण प्रकाशन, 1973
10. यादव डॉ0 वीरेन्द्र सिंह, उत्तर आधुनिकता : कुछ अक्स,कुछ अन्देशे,ओमेगा प्रकाशन,नई दिल्ली,2010
11. वर्मा धनंजय, आधुनिकता के बारे में तीन अध्याय–विद्या प्रकाशन, 1984
12. शर्मा हरिचरण, हिन्दी उपन्यास का संक्षिप्त इतिहास–माया प्रकाशन, 2000
13. शर्मा शिवकुमार, हिन्दी उपन्यास : युग और प्रवृतियाँ–अशोक प्रकाशन, 1994
14. सिंह ,विजय बहादुर,.उपन्यास समय और संवेदना–,वाणी प्रकाशन ,नई दिल्ली–2008
15. जलील डॉ0 वी0के0 अब्दुल, समकालीन हिंदी उपन्यास : समय और संवेदना–वाणीप्रकाशन,दिल्ली–2006
16. चौहान डॉ0 अर्जुन उपन्यास समय और संवेदना , वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली–2008
17. मदान इन्द्रनाथ, आधुनिकता और हिन्दी उपन्यास–वाणी प्रकाशन,नई दिल्ली–2008
18. पालीवाल कृष्णदत्त, उत्तर आधुनिकता और दलितवाद–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–2006
19. यादव राजेन्द्र ,उपन्यास : स्वरूप और संवेदना–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–1997
20. साहनी भीष्म, आधुनिक हिन्दी उपन्यास–राजकमल प्रकाशन,दिल्ली–1980
21. नवीन देवी शंकर, मिश्र सुशांत कुमार, उत्तर आधुनिकता कुछ विचार–वाणी प्रकाशन,दिल्ली–1997
22. पांडे, सीतांशु, भूषण,डॉ0 शशि आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के औजार–म.रा. प्र0 समिति,अक्षरा,भोपाल,म.प्र.